पेरिस
अप्रील ११, २००६

सन्देश संख्या १६६
पश्चिम का अनुकरण प्रकाश से तमस की ओर गमन है

बाइबिल का कथन है कि तुम पाप के कारण उत्पन्न हुए हो, अतः तुम एक पापी हो । इस पाप के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार नहीं हो । अतः इससे मुक्त होने के लिए तुम्हें अपने अन्तर–अस्तित्व को समझने की जरूरत नहीं है । इसका कारण तो 'आदम' और 'हौवा' का 'मूल पाप' है । इसके लिए तुम्हें ईश्वर–पुत्र या उद्धारक पर निर्भर रहना पड़ेगा जो भविष्य में, कयामत के दिन तुम्हें स्वर्ग या नरक में भेजेगा । मन और मैं शाश्वत, अस्तित्वमय एवं कालातीत जीवन सभी झरने को भूत–वर्तमान–भविष्य रूपी कालखण्ड में अवरुद्ध कर देता है । यह 'मैं' स्वर्ग और नरक की तरह परस्पर विपरीतों के अन्धकारपूर्ण गलियारे को निरन्तर बनाए रखता है तथा वह इनके बीच के तृतीय आयाम अर्थात अद्वैत रूपी मोक्ष (स्वतन्त्रता) की आवश्यकता महसूस नहीं करता । एक पापी के रूप में तुम अपने प्रति दया–भाव तथा अपराध बोध से ग्रस्त होते हो । इसी कारण तुम्हें रीढ़ की हड्डी अलग रखकर तथा अपराध बोध के साथ चर्च जाना होगा । तुम्हें दुःखभोग एवं आत्म–दया के निकृष्टतम प्रतीक 'पवित्र क्रूस' को एक महान प्रतीक मानकर (जो 'मै–पना' का ही घनीभूत रूप है), उससे अभिभूत रहना होगा । वस्तुतः क्रूस का सन्देश है –'' 'मैं' का मिट जाना''। इसमें खड़ी (उर्ध्व) लकीर ''मैं'' का तथा पड़ी (क्षैतिज) रेखा उसके काटे जाने का प्रतीक है । अगले छः दिनों तक पापकर्म करने हेतु तैयार होने के लिए ही रविवार के दिन चर्च में, पाप स्वीकार करने का पाखण्डपूर्ण खेल चलता रहता है ।

मार्क्स कहते हैं कि तुम्हारे दुःख का कारण समाज का वर्गों में विभाजित होना है । अतः तुम्हें अपने भय, लोभ (जिसे महत्वाकांक्षा का नाम देकर गौरवान्वित किया जाता है), विश्वास–पद्धतियों पर निर्भरता, अधिक धन कमाने तथा अधिक संचय को बढ़ाने वाले मूल्य, ईर्ष्या (जिसे तुलना का नाम देकर प्रोत्साहित किया जाता है) आदि मानसिक प्रदूषणों से मुक्त होने के लिए, इनके निरीक्षण की, इनके जाँचने–परखने की कोई जरूरत नहीं है । समाज 'तुम' हो, मार्क्स इसका बोध होने की अनुमति नहीं देते । 'तुम' समाज का निर्माण करते हो, अतः समाज में परिवर्तन हेतु तुम्हारे 'त्वं–भाव' में आमूल परिवर्तन आवश्यक है । अन्यथा, क्रांति के नाम पर उसी पुरानी सड़ी–गली सामाजिक–व्यवस्था को नए आवरण में प्रस्तुत किया जाएगा । किन्तु वह पूर्व व्यवस्था की ही परिमार्जित निरन्तरता मात्र होगी । यह केवल पुर्नमूल्यांकन होगा न कि मौलिक परिवर्तन । वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त द्वारा समाज परिवर्तन में, स्वयं में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है । इसी कारण सत्ता पर आधिपत्य जमाने वालों का एक और वर्ग उत्पन्न हो जाता है । ऐसे ही नए वर्ग ने सोवियत रूस में स्टालीन को जन्म दिया जिसने करोड़ों लोगों की उसी प्रकार हत्या की जिस तरह ईसाई लोगों ने बाईबिल हाथ में रखकर तथा 'अपने पड़ोसी को स्वयं जैसा प्यार करो' का नारा लगाते हुए इस पृथ्वी पर करोड़ों लोगों की हत्या थी ।

मार्क्स ने वस्तुतः यहूदी–ईसाई धर्म की विषय–वस्तु को ही पुनर्व्यवस्थित किया है तथा उन्हीं के तन्तुओं के ताना–बाना से मार्क्सवाद नामक अपना सिद्धांत बनाया है । उन्होंने धर्म रूपी राक्षस को समाप्त करने का दावा किया परन्तु लेनिन, स्टालिन, माओ आदि स्वयं राक्षस बन गए । धर्मनिरपेक्षता के चोला में मार्क्स वस्तुतः यीशु ही हैं । उनके ''दास कैपिटल'' की बातें बाइबल से ली गई हैं । यहूदी–ईसाई परम्पराओं को प्रकट रूप से अस्वीकार करने के बावजूद मार्क्स एक श्रेष्ठ यहूदी हैं । यहूदी–ईसाई धर्म की अवधारणाओं को ही पुनर्व्यवस्थित कर उन्हें मार्क्सवाद में धर्मनिरपेक्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है । यहूदी–ईसाइयत मार्क्स के रक्त एवं अस्थिमज्जा में मौजूद था । ईसाइयों का 'स्वर्ग का साम्राज्य' और साम्यवाद का 'प्रसन्नता का साम्राज्य' वस्तुतः एक ही है । सभी विरोधों में स्वयं के विरोध का तत्व भी निहित होता है ।

ईसाइयत के 'प्रेम–सन्देश' का प्रचार–प्रसार हो या साम्यवाद की 'क्रांति' का प्रचार–प्रसार दोनों में अपरिहार्य रूप से हिंसा देखा गया है । यहूदी–ईसाइयत से प्रभावित कुरान (२:१६१) कहता है –''व्यापक भलाई तथा ईश्वर, अल्लाह–हो–अकबर के अधिकाधिक महिमामण्डन हेतु उनको जला दो, यातना–शिविरों में फेंक दो तथा उनकी हत्या कर दो ।'' मार्क्स का दर्शन तार्किक एवं वैज्ञानिक भाषा में अभिव्यक्त है, किन्तु मूलतः काव्यात्मक है तथा यहूदी–ईसाइयत की ही बात करता है । यह दुनिया स्वप्न द्रष्टाओं के स्वप्न, धर्मप्रचारकों के प्रचार–कार्यों तथा पैगम्बरों के चमत्कारिक–कृत्यों के बहुत दुःख झेल चुकी है ।

फ्रायड ने कहा कि अपने लालन–पालन के दौरान आप जो मानसिक आघात पाते हैं, वे आपकी चेतना के गहरे तल में जमा हो जाते हैं और वे ही आपके दुःख के कारण हैं । उनका विश्लेषण 'मैं' के पुनर्निमाण में सहायक है। परन्तु ''मैं'' से मुक्ति कैसे मिले, इस सम्बन्ध में उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। वस्तुतः यह मानसिक उलझनों को और भी बढ़ा देता है और यही कारण है कि अन्य लोगों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिकों में आत्म–हत्या दर दूना है । तकनीकी सन्दर्भों में, जहाँ कर्त्ता और कम भिन्न होते हैं, विश्लेषण उपयोगी है । परन्तु जहाँ 'मन' ही विश्लेषक और 'मैं' ही विश्लेषित हो, वहाँ विश्लेषण विकृति है। एडलर का दावा है कि हीन–भावना की मनोग्रन्थि' तथा 'शक्ति के लिए संकल्प' ही समस्यायें हैं । इनसे निपटने के लिए उसने उपाय भी बताये हैं ।

पश्चिम कहता है – ''मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ'' और मानता है कि 'विचार' और 'विचारक' का द्वैत वास्तविक है । जबकि पूरब कहता है कि 'मैं' मिथ्या है तथा 'चितिशक्ति' वास्तविक है । पूरब प्रत्येक जीवित शरीर में पहले से ही उपलब्ध चितिशक्ति के संयोग के प्रति जागरण के लिए कहता तो है किन्तु 'विचार' और 'विचारक' के मध्य मिथ्या विभाजन में फँसकर प्रसन्न रहने की अनुमति नहीं देता । यह भ्रामक विभाजन सुप्त भगवत्ता की जागृति को बाधित करता है और विभेदकारी चित्तवृत्ति को पुष्ट करता है, जो हमें सतत् दुःख एवं दुःखभोग में उलझाए रखती है ।

पूरब कहता है कि शरीर में चितिशक्ति का संयोग पूर्ण है क्योंकि पूर्ण से केवल पूर्ण ही निकाला जा सकता है और उसके बाद भी पूर्ण ही शेष बचता है। यह पूर्णता का, अपरिमेय का, अनंत का, अनाम का गणित है । अनन्त से अनन्त निकाला जाय तो भी अनन्त ही बचता है । जीवन के रूप में तुम दिव्य हो जबकि क्षुद्र मन के रूप में तुम बाईबिल का घटिया पापी हो सकते हो, इसे हमेशा विश्वास–पद्धति, धर्मांधता एवं संघर्ष से गुजरना पड़ता है और सर्वदा किसी उद्धारक पैगम्बर, अवतार, सद्गुरू, मसीहा, ईश्वर, हंसराज, परमहंस, बाबा, माता या आनन्द आदि की अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है ।

पूर्णमदः पूर्णमिदम्
पूणात् पूर्णमुदच्चते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय
पूर्णमेवावशिष्यते ।।

अन्तर्यात्रा को उपलब्ध होना अर्थात स्वयं द्वारा स्वयं के लिए परिधि से केन्द्र की ओर सरकने की अन्तर्दृष्टि को उपलब्ध होना ही पूरब का सन्देश है । बाहर कुछ नहीं है, सब कुछ अन्दर ही है । अतः निष्काम और द्रष्टारहित देखना हो सकता है क्या ?

अभयं सत्त्वसंशुद्धिः,
ज्ञानयोग व्यवस्थितः ।
दानं च दमश्च यज्ञश्च.
स्वाध्यायस्तपः आर्जवम् ।।
(भगवद्गीता १६:१)